शरीर और स्वास्थ्य से मेरा संबंध

वीणा शिवपुरी

नहीं मालूम कब मेरा अपना शरीर मेरे लिए अजनबी बन गया। मुझे अपनी शरीर रचना का भी पूरा ज्ञान नहीं रहा। शरीर के भीतर क्या प्रक्रियाएं होती हैं यह भी किसी ने नहीं बताया। सामाजिक रीतिरिवाजों और रूढ़ियों ने अपने शरीर के बारे में जानने को ही बुरा माना। बचपन से लड़की को शरीर को देखने, छूने, पहचानने पर टोका। केवल माहवारी होने पर बढ़ी-बूढ़ियों ने थोड़ी सी जानकारी दी। लेकिन उससे आगे मेरे सवालों के जवाब नहीं मिले।

मेरे शरीर को कभी गंदा, तो कभी नर्क का द्वार-बताया। उसके बारे में मेरी उत्सुकता को दबाया। बस, यूं ही धीरे-धीरे मेरे शरीर से मेरा रिश्ता टूट गया। शहरीकरण हुआ, आधुनिक शिक्षा आई। गांवों का घरेलू अपनापन चला गया। पहले तो जंगल, खेत, खलिहान में सहेलियों के साथ खेलते-बतियाते बहुत कुछ जान लेती थी। नई सभ्यता में वह सब खत्म हो गया। न गांव की नाईन रही, न दाई। अब मेरा शरीर ढकने, छिपाने और चुप रहने की चीज बन गया।

मेरा स्वास्थ्य

पहले पेट में दर्द होने पर घर की कोई भी औरत गर्म तेल से पेट मल देती थी। खांसी-जुकाम, बुखार में मैं खुद काढ़ा बना कर पी लेती थी। जचगी के दर्द उठते तो सास व देवरानी संभाल

लेती थीं। कोई माथे पर हाथ फिराती, तो कोई सहारा देकर उकड़ूं बैठने में मदद करती। बीच-बीच में ठिठोली भी करती जाती—"अरी बहना तब तो हंसी, अब क्यों रोती है?" मुझे मालूम होता था कि क्या खाने से पेट में अफारा होता है। कौन से मौसम में तबीयत ढीली रहती है।

अब जब बीमार पड़ती हूं या जचगी होती है तो डाक्टर-नर्स न मुझसे कुछ पूछते हैं, न कुछ बताते हैं। बस आंख देखी, छाती देखी, गला देखा और पर्चा लिख दिया। जचगी के दर्दों में घंटों अकेली पड़ी कराहती हूं। उस कमरे की मेज पर, बड़ी-बड़ी लाइटों के नीचे पड़ी डर से कांपती रहती हूं। सारा शरीर अकड़ जाता है। बीच-बीच में डाक्टर-नर्स आती भी हैं तो डांट डपट कर चली जाती हैं। मैं पुकारती रहती हूं "हाय मेरी मां।"

मेज पर पीठ के बल लेट कर न तो बच्चा नीचे खिसकता है, न मैं ज़ोर लगा पाती हूं। फिर सुइयां लगती हैं, शरीर काटा जाता है। खींचखांच कर, मशीनों-औजारों से बच्चे को बाहर निकालते हैं। वहां पड़े-पड़े मुझे लगता है कि मैं कितनी बेबस और लाचार हूं। कसाई की छुरी तले की बकरी।

यह सब बदलना होगा

मेरा शरीर मेरा अपना है। उसके उतार चढ़ाव, सुख दुख को मैं सबसे अच्छी तरह जानती हूं। आखिर मैं उसे बीस, तीस, पचास साल से जानती हूं। जिस डाक्टर ने आज पहली बार मुझे देखा वह भला मुझे मुझसे बेहतर कैसे जान सकता है। हां, वह बीमारी और दवाइयों के बारे में जानता है तो मैं भी तो अपने बारे में जानती हूं। हम दोनों को मिल कर, आपस में सलाह कर के बीमारी का मुकाबला करना चाहिए। तभी मैं सेहतमंद हो सकती हूं।

अगर वह समझे कि मैं मूर्ख हूं, मेरी राय का कोई महत्व नहीं, सिर्फ वही सारी समझ रखता है तो बात नहीं बनेगी। पिछली बार मैंने डाक्टर से कहा था कि मेरी दूध भरी छातियों में जलन हो रही है। मुझे मालूम है कि अंदर फोड़ा पक रहा है। पहले भी ऐसी जलन हुई थी तो फोड़ा निकला था। डाक्टर ने एक न सुनी। तीन दिन बाद गई, तब तक सूजन और लाली बाहर तक फैल गई थी। 103 डिग्री बुखार चढ़ आया था। कहने लगा फोड़ा है, ऑपरेशन करना पड़ेगा। "अरे माटी मिले, तूने मेरी पहले क्यों न सुनी।"

शरीर और सेहत से दोस्ती

हमारे शरीर से हमें प्यार होना चाहिए। उसकी समझ होनी चाहिए। छोटी मोटी जांच परख तो खुद हमें आनी चाहिए। ताकि बात-बात में डॉक्टर के यहां अस्पताल न भागना पड़े। हमारी दादी नानी के नुस्खे कितने काम के थे। खांसी हुई तो हल्दी शहद चाट ली, नहीं तो रात को दूध हल्दी, देसी घी के साथ पी ली,। अब खांसी का बाजारी मिक्सचर पीने से दिन भर नींद आती है। भला काम कौन करेगा। बात-बात में सुई, गोली, कैप्स्यूल का ढेर। हमारा पेट तो दवा की दुकान बन जाता है। फिर किसी दवा से जी मिचलाता है तो किसी से पेट खराब हो जाता है। एक बीमारी का इलाज कराओ और दो साथ में ले आओ।

आखिर क्या करें?

अंग्रेज़ी इलाज के भी कई फायदे हैं। उसमें ऐसी जांचों की सुविधा है जिनसे शरीर के भीतर का हाल मालूम हो जाता है। जहां चीर फाड़ के

बिना इलाज नहीं हो सकता वहां भी यह मदद करता है।

हमारा कहना तो बस यह है कि डॉक्टर सर्वेसर्वा न बन कर हमारा दोस्त बने। छोटी-मोटी बीमारियों में कड़ी-सख्त दवाइयां न दे वरना बड़ी बीमारी होने पर उन दवाइयों का फायदा ही नहीं होगा। सबसे बड़ी बात यह कि हम अपने घरेलू इलाज, आयुर्वेदिक, यूनानी दवाइयों को दोबारा जिंदा करें। छोटी-मोटी चीजों से खुद निपटें। हमारे शरीर में प्रकृति ने रोगों से लड़ने की ताकत दी है। उसे पनपाएं। अपने शरीर को पहचानें।

एंटीबायोटिक दवाइयों की खोज इलाज की दुनिया में एक बड़ी क्रांति थी। शरीर के भीतरी अंगों की बीमारियों और गंभीर रोगों का इलाज इनसे संभव हो सका। लेकिन पिछले कुछ दशकों से दुनिया भर के डाक्टर यह जान कर बड़े चिंतित हैं कि अब ये दवाइयां फायदा नहीं कर रही हैं। या यूं कहें कि इन दवाइयों के अंधाधुंध इस्तेमाल से अब हमारा शरीर इनका आदी होता जा रहा है। अब गंभीर रोग होने पर इलाज कैसे किया जा सकेगा? हम सबको भी इसके बारे में सोचना है।

ज़्यादातर आम बीमारियों में इतनी ज्यादा और सख्त दवाइयों की ज़रूरत ही नहीं होती जितनी दी जाती है। इसके पीछे डॉक्टरों, वैज्ञानिकों और दवा बनाने वाली कंपनियों की मिली भगत है। हमें इस बारे में चौकन्ना रहने की जरूरत है। □